International Journal of Humanities, Social Sciences and Literary Research
(An International Peer-Reviewed (Refereed) Journal)
Website: www.ijhslr.org/
E-mail: editorinchief@ijhslr.org
ISSN (Online): 3139-3225

बिरहा लोकगीतः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. सुजीत कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी राजकीय महाविद्यालय, भदोही, उत्तर प्रदेश

Received: 01 July 2026, Revised: 20 July 2026, Accepted: 30 July 2026, Available Online: 31 July 2026
https://doi.org/10.5281/zenodo.21849476

सारांश

भारत, विशेषकर ग्रामीण समाज में, लोकगीतों का विशेष सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व रहा है। 'बिरहा' उत्तर भारत की एक महत्वपूर्ण लोकगीत परंपरा है, जिसने लंबे समय से जनमानस पर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी है। बिरहा के माध्यम से ग्रामीण जीवन की विविध घटनाओं, सामाजिक अनुभवों और जनभावनाओं को लोकभाषा, लोकधुन तथा सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इसका प्रमुख क्षेत्र उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल तथा बिहार से लगे सीमावर्ती क्षेत्र हैं। यद्यपि बिरहा विभिन्न जातीय एवं सामाजिक समूहों में लोकप्रिय रहा है, तथापि यादव समुदाय में इसकी विशेष लोकप्रियता देखने को मिलती है। समय के साथ बिरहा की शैली, प्रस्तुति और विषयवस्तु में भी निरंतर परिवर्तन हुआ है। प्रारंभिक दौर में कृषि-व्यवस्था से संबंधित समस्याएँ, ग्रामीण जीवन की कठिनाइयाँ तथा सामंती शोषण और दमन जैसे विषय बिरहा गायन के प्रमुख विषय रहे। इसके बाद स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में स्वतंत्रता संग्राम में योगदान देने वाले नायकों और उनके संघर्षों को भी बिरहा के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाया गया। समकालीन दौर में बिरहा गायन का विस्तार सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक मुद्दों तक हुआ है। इस प्रकार बिरहा केवल मनोरंजन का साधन न होकर सामाजिक चेतना, सामुदायिक पहचान तथा जन-अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली माध्यम भी है।

मुख्य शब्द: लोकगीत, लघु परंपरा, बनारस घराना, सामंती व्यवस्था, लोकसंगीत

उद्देश्य

1. लघु परंपरा के रूप में बिरहा के क्षेत्रीय विस्तार की व्याख्या करना।
2. बिरहा के विभिन्न स्वरूपों एवं उसकी विषयवस्तु का विवेचन करना।
3. बिरहा के जातिगत एवं लैंगिक पक्ष का विश्लेषण करना।
4. बिरहा के सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

शोध-प्रविधि एवं अध्ययन क्षेत्र

यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है। इसके अंतर्गत पूर्व प्रकाशित साहित्य, उपलब्ध संगीत अभिलेखों, रिकॉर्डिंग तथा संगीत प्रस्तुतियों का अध्ययन एवं अवलोकन किया गया है। इसके अतिरिक्त, विषय से संबंधित लोक-संस्कृति तथा उसके सामाजिक एवं राजनीतिक पक्षों का भी विश्लेषण किया गया है। इस दृष्टि से यह अध्ययन मूलतः नृसंगीतशास्त्रीय (एथ्नोम्यूज़िकोलॉजी) उपागम पर आधारित है, जो लोकपरंपरा अथवा लघु परंपरा के अध्ययन को केंद्र में रखता है।

इस अध्ययन का क्षेत्र 'बिरहा' लोकगीत के प्रचलन एवं उससे संबंधित सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ा हुआ है। बिरहा का भोजपुरी भाषा एवं संस्कृति से घनिष्ठ संबंध होने के कारण इसका व्यापक प्रचलन भोजपुरी भाषी क्षेत्रों में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश में बिरहा मुख्यतः वाराणसी, गाजीपुर, चंदौली, जौनपुर, मऊ, आजमगढ़ तथा भदोही आदि जनपदों में लोकप्रिय है। वाराणसी को बिरहा लोकगायन का प्रमुख केंद्र माना जाता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य क्षेत्र वाराणसी जनपद है। वाराणसी ऐतिहासिक रूप से भारतीय कला, संगीत एवं संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यहाँ हिंदी तथा भोजपुरी दोनों भाषाओं का व्यापक प्रचलन है।

बिरहाः उद्भव, महत्व एवं स्वरूप

भारतीय ज्ञान-परंपरा में लोकगीतों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लोकगीत मुख्यतः मौखिक ज्ञान-परंपरा का हिस्सा हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते रहे हैं। इनके माध्यम से इतिहास, रीति-रिवाज, सामाजिक मान्यताएँ, परंपराएँ तथा जीवन-पद्धतियाँ लंबे समय तक संरक्षित एवं संचारित होती रही हैं। बिरहा भी इसी लोकपरंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है। भोजपुरी भाषा से इसकी निकटता के कारण यह आमजन के बीच अत्यंत लोकप्रिय रहा है।

समाज की भाषायी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना के अनुरूप लोकगीतों की शैली, विषयवस्तु और प्रस्तुति में विविधता दिखाई देती है, किंतु इन सभी में एक समान विशेषता विद्यमान रहती है–जनमानस से उनका घनिष्ठ जुड़ाव। सोहर, कजरी, मेंहदी गीत, देवी गीत, नाट्यगीत, विदाई गीत, रोपनी गीत, मल्हार तथा फागगीत आदि लोकगीतों के प्रमुख उदाहरण हैं (प्रसाद, 2024)। इनमें से अनेक लोकगीतों की प्रस्तुति एवं विषयवस्तु में बिरहा शैली से समानता दिखाई देती है।

बिरहा केवल सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करने का माध्यम ही नहीं है, बल्कि यह भोजपुरी समाज की भाषा, बोली, लोकमान्यताओं, त्योहारों तथा जीवन-संस्कारों को संरक्षित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ग्रामीण समाज में यह अनौपचारिक शिक्षा तथा लोक-इतिहास के संप्रेषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो बिरहा एक प्रकार की 'सांस्कृतिक पूँजी' है, जो सामूहिक चेतना के माध्यम से लोकज्ञान एवं लोकपरंपराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है।

प्रकार्यवादी दृष्टिकोण से देखा जाए तो लोकपरंपराएँ, जिनमें बिरहा प्रमुख है, सामाजिक एकता एवं सामुदायिक जुड़ाव को सुदृढ़ करने वाले महत्वपूर्ण कारकों के रूप में कार्य करती हैं। इसके विपरीत, मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में

बिरहा की विषयवस्तु विशेष महत्व रखती है। बिरहा के माध्यम से एक ओर शोषण, जातिगत भेदभाव, लैंगिक उत्पीड़न तथा सामाजिक-आर्थिक असमानता जैसे प्रश्नों को अभिव्यक्ति मिलती है, वहीं दूसरी ओर इसके गायन एवं सामाजिक प्रसार में जातिगत संबद्धता के तत्व भी दिखाई देते हैं। इस प्रकार बिरहा को सामाजिक संरचना और उसमें विद्यमान शक्ति-संबंधों को समझने के एक महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में देखा जा सकता है।

उत्तर-आधुनिक चिंतन में किसी समाज की लोकरीतियों एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को सामाजिक संरचना के महत्वपूर्ण घटक के रूप में देखा जाता है। उत्तर-आधुनिक चिंतक जैक्स देरिदा पाठ के किसी एक स्थिर एवं अंतिम अर्थ को स्वीकार नहीं करते। इस संदर्भ में बिरहा के गीतों को भी एकार्थी न मानकर बहुअर्थी सांस्कृतिक पाठ के रूप में समझा जा सकता है। किसी गीत का बाह्य अर्थ एक हो सकता है, किंतु उसके अंतर्निहित अर्थ अनेक सामाजिक संदर्भों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। उदाहरणतः बिरहा को केवल नायक-नायिका के विरह तक सीमित नहीं किया जा सकता; इसे प्रवासन, अपने गाँव एवं सामाजिक परिवेश से दूरी तथा उससे उत्पन्न भावनात्मक एवं सामाजिक वंचना के संदर्भ में भी समझा जा सकता है। अतः बिरहा के अंतर्निहित अर्थ एवं प्रतीकात्मक पक्ष भी इसके समाजशास्त्रीय अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं।

ग्रामीण समाज में विभिन्न सामाजिक प्रश्नों एवं विमर्शों के निर्माण में बिरहा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जब जातिगत विभेद, सामंती शोषण, लैंगिक असमानता, सामाजिक वंचना अथवा अन्याय जैसे प्रश्न उभरते हैं, तब बिरहा की गायन शैली एवं विषयवस्तु सामान्य जनमानस में इन मुद्दों के प्रति समझ विकसित करने का कार्य करती है। मिशेल फूको ने विमर्श को ज्ञान एवं सत्ता-संबंधों के निर्माण से जोड़कर देखा है। इस दृष्टि से बिरहा को ग्रामीण समाज में सामाजिक ज्ञान, जनचेतना और सांस्कृतिक विमर्श के निर्माण के एक माध्यम के रूप में समझा जा सकता है।

भारतीय चिंतन परंपरा में भी लोकपरंपराओं को विशेष महत्व दिया गया है। भारतविद्या उपागम के अंतर्गत राधाकमल मुखर्जी, ए. आर. देसाई, ए. के. सरन, कोमल कोठारी तथा निर्मल कुमार बोस आदि विद्वानों ने भारतीय समाज एवं संस्कृति के अध्ययन में स्थानीय परंपराओं और लोक-सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के महत्व को रेखांकित किया है। इन विचारों के आधार पर भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना, उसमें विद्यमान विसंगतियों तथा सामाजिक एकीकरण के तत्वों को लोकगीतों, विशेषकर बिरहा के माध्यम से समझा जा सकता है। बिरहा में किसान जीवन, श्रमिक वर्ग, सामाजिक असमानता तथा ग्रामीण समाज की विभिन्न समस्याओं को अभिव्यक्ति मिलती है।

राधाकमल मुखर्जी के अनुसार भारतीय कला सामाजिक एवं नैतिक परिवेश से गहराई से जुड़ी हुई है (नागला, 2017)। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि बिरहा एक ओर सामाजिक संरचना की अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर सामाजिक संरचना में परिवर्तन की चेतना उत्पन्न करने वाला महत्वपूर्ण सांस्कृतिक माध्यम भी है।

वाराणसी प्राचीन काल से ही कला, संगीत एवं संस्कृति के प्रमुख केंद्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। यहाँ संगीत की दो व्यापक धाराओं को देखा जा सकता है। पहली, वृहद परंपरा के अंतर्गत विकसित बनारस संगीत घराना और दूसरी, लघु परंपरा के अंतर्गत भोजपुरी भाषा एवं स्थानीय संस्कृति से विकसित लोकसंगीत की परंपरा, जिसमें बिरहा, कजरी आदि प्रमुख हैं। जातक साहित्य में भी विभिन्न संगीत विद्यालयों एवं संगीत संबंधी परंपराओं के अस्तित्व के संकेत मिलते हैं। आधुनिक काल में बनारस घराना भारतीय शास्त्रीय संगीत की समृद्ध परंपराओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

वाराणसी की संगीत परंपरा के विकास में विभिन्न राजकीय एवं सांस्कृतिक संरक्षणकर्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। महाराजा ईश्वरी प्रसाद के काल में बनारस की संगीत परंपरा में ध्रुपद, चैती, झूमरी आदि विभिन्न

शैलियों का विकास हुआ। इसी व्यापक सांस्कृतिक परिवेश में लोकसंगीत की विभिन्न विधाओं को भी विकसित होने का अवसर मिला।

बिरहा के उद्भव के संबंध में विद्वानों के बीच पूर्णतः एकमतता नहीं है। एक मान्यता के अनुसार इसका उद्भव मध्यकाल में भोजपुरी क्षेत्र में हुआ, जब भक्ति आंदोलन तथा लोकभाषाओं के विकास की प्रक्रिया गति प्राप्त कर रही थी। हालाँकि, बिरहा के प्रारंभिक उद्भव और उसके काल-निर्धारण के संबंध में अधिक प्रमाणिक एवं व्यवस्थित ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता है। वर्तमान स्वरूप में बिरहा एक विशिष्ट एवं संगठित लोकगायन शैली के रूप में विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी में स्थापित हुआ। इसी कालखंड में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष, स्वतंत्रता आंदोलन तथा स्थानीय नायकों और शहीदों के बलिदान से संबंधित बिरहा गीतों का भी व्यापक प्रसार हुआ। इन गीतों ने स्वतंत्रता संघर्ष की चेतना को आम जनमानस तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आज बिरहा वाराणसी सहित आसपास के भोजपुरी-बहुल क्षेत्रों में लोकप्रिय लोकसंगीत की एक महत्वपूर्ण विधा है। लोकगीतों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्ता को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि वे किसी समाज के सामूहिक अनुभव, इतिहास, परंपराओं और जीवन-पद्धति को अभिव्यक्त करते हैं। दास (1956) के अनुसार, जिस प्रकार वेदों में आर्य सभ्यता के सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति दिखाई देती है, उसी प्रकार ग्रामगीतों में प्राचीन लोकजीवन एवं उसकी सांस्कृतिक परंपराओं की झलक मिलती है। लोकगीत स्थानीय रंग में रचे-बसे होते हैं और इनमें इतिहास की झलक के साथ-साथ सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं, प्राचीन परंपराओं, संस्कारों तथा जीवन-शैली की विविधता भी प्रतिबिंबित होती है (प्रसाद, 2024)।

इस प्रकार बिरहा को केवल मनोरंजन अथवा संगीत की एक लोकविधा के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। यह ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक स्मृति, सामुदायिक पहचान, सामाजिक संबंधों, संघर्षों तथा परिवर्तनशील चेतना को अभिव्यक्त करने वाली महत्वपूर्ण लोक-सांस्कृतिक संस्था है। इसके अध्ययन के माध्यम से भोजपुरी समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की अनेक अंतर्धाराओं को समझा जा सकता है।

बिरहा का विकास एवं काव्यात्मक स्वरूप

ब्रिटिश शासनकाल में रोजगार एवं आजीविका की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से बड़ी संख्या में लोग शहरों की ओर पलायन कर गए। इसके परिणामस्वरूप उन्हें लंबे समय तक अपने घर-परिवार से दूर रहना पड़ता था। दिनभर के कठोर श्रम के पश्चात् श्रमिक छोटे-छोटे समूहों में एकत्र होकर ऊँचे स्वरों में लोकगीतों का गायन किया करते थे। पूर्व में वाराणसी के विश्वनाथ मंदिर क्षेत्र के आसपास स्थित बाजारों, जैसे ठठेरी बाजार, चौक आदि में भी बिरहा गायन की परंपरा देखने को मिलती थी।

लोकगीतों की विभिन्न शैलियों में बिरहा की संरचना विशिष्ट है। इसे संस्कृत की द्विपदी शैली के समान माना गया है, जिसमें एक पक्ष अपनी बात प्रस्तुत करता है और दूसरा पक्ष उसी छंदात्मक संरचना में उसका उत्तर देता है (प्रसाद, 2024)। बिरहा गायन में मात्राओं की संख्या निश्चित न होकर गायन की धुन, प्रस्तुति तथा गायक की शैली पर निर्भर करती है। बिरहा की रचना में सामान्यतः चार चरण होते हैं, जिसके कारण इसे 'चरकड़िया' भी कहा जाता है। इसके प्रथम एवं तृतीय चरण में प्रायः सोलह तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में दस अक्षरों का प्रयोग किया जाता है (जैन, 1999)।

उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं–

'पिया-पिया करत पियर भइली देहिया, लोगवा कहेला पिंड तेरा।
गाँववा के लोगवा त गरमियों न जानेला, भइले गवनवा न मोर।।'
(वर्मा, 1985)

बिरहा लोकगीत के विभिन्न स्वरूप

समय, स्थान, सामाजिक परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप बिरहा लोकगीत के अनेक स्वरूप विकसित हुए हैं। इनमें प्रमुख स्वरूप निम्नलिखित हैं–

1. हाँका गीत

'हाँका' शब्द 'हाँकना' धातु से निर्मित माना जाता है। इस प्रकार के गीत मुख्यतः अहीर समुदाय द्वारा जंगल अथवा चरागाह में गाय चराते समय गाए जाते थे। इन गीतों में पशुपालन, ग्रामीण परिवेश तथा दैनिक जीवन की सहज अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

'हाँकवे नंदा हो रे, बछड़ा चसा हम जाब रे।
हाँका नंदो सातो कियारी, सूगा लागे हो रे।।'
(जैन, 1999, पृ. 449)

2. पचरा लोकगीत

पचरा लोकगीत मुख्यतः अहीर समुदाय द्वारा 'राजाबली' एवं 'पवरियों' नामक लोकदेवताओं की आराधना के अवसर पर अमावस्या की रात में गाए जाते हैं। इन गीतों में लोकविश्वास, धार्मिक आस्था तथा सामुदायिक जीवन की अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

'जागु-जागु देविया, जागु दुरुगवा, जागु दिनवानाथ हो।
जागु-जागु इहवाँ के डिहऊ, तोको कइले बानी आस हो।।'
(जैन, 1999, पृ. 447)

3. देवी-पूजन संबंधी बिरहा

स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण समाज में अकाल, महामारी, बाढ़ तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं से मुक्ति की कामना के लिए प्रकृति एवं देवी-देवताओं की पूजा से संबंधित लोकगीतों का गायन किया जाता रहा है। देवी-पूजन से संबंधित बिरहा गीत आज भी नवरात्र एवं दशहरा जैसे धार्मिक अवसरों पर गाए जाते हैं। इन गीतों में लोकविश्वास, प्रकृति के प्रति आस्था तथा संकट से मुक्ति की सामूहिक आकांक्षा अभिव्यक्त होती है।

'हे माई, हे माई, तू सौ बसी परबतवा पै, मोका छोड़े नावै किनार।'
(अवस्थी, 1985, पृ. 196)

इसी प्रकार कृष्ण-भक्ति, राम-नाम, शिव-महिमा तथा गोवर्धन-लीला से संबंधित अनेक बिरहा लोकगीत भी प्रचलित हैं। इन गीतों में धार्मिक आस्था के साथ-साथ लोकजीवन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इनका गायन विशेष रूप से यादव समुदाय में लोकप्रिय रहा है।

'बिरहा' लोकगीत का जातीय एवं लैंगिक परिप्रेक्ष्य

'बिरहा' को प्रायः अहीर समुदाय की प्रमुख लोकगीत परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, किंतु इसे केवल एक जाति विशेष की लोकपरंपरा मानना पूर्णतः उचित नहीं होगा। उपलब्ध सामग्री से संकेत मिलता है कि बिरहा गायन में विभिन्न जातीय एवं धार्मिक समुदायों की सहभागिता रही है। भारतीय बिरहा लोक संघ से संबंधित 106 गायकों में केवल 35 गायक अहीर समुदाय से थे, जबकि शेष गायकों में मुस्लिम, धोबी, खटिक

आदि विभिन्न सामाजिक समूहों के लोग सम्मिलित थे। इससे स्पष्ट होता है कि समय के साथ बिरहा ने विभिन्न सामाजिक समुदायों के बीच अपनी स्वीकार्यता एवं लोकप्रियता विकसित की।

विभिन्न समुदायों ने बिरहा की मूल लोकगायन परंपरा को अपनाते हुए अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप इसकी विशिष्ट शैलियों का विकास किया। उदाहरणतः धोबिया बिरहा, अहीरा बिरहा तथा खटिकवा बिरहा आदि इसके विभिन्न जातीय रूपों के रूप में उल्लेखित किए जाते हैं। इस प्रकार बिरहा को एक ऐसी लोकसंगीत परंपरा के रूप में देखा जा सकता है, जिसने विभिन्न सामाजिक समूहों को अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए मंच प्रदान किया।

लोकपरंपरा में बिरहा के अहीर समुदाय से संबंध को लेकर अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। एक लोककथा के अनुसार–

"बिरहा पहले अहीरों का था।
एक चरवाहे ने इसे अपनाया।
बदले में उसे सोलह सौ भेड़ें
और अपनी सुंदर पुत्री देनी पड़ी।"
(प्रसाद, 1987)

यद्यपि इस प्रकार की लोककथाओं को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता, किंतु ये कथाएँ बिरहा की जातीय स्मृति एवं सामुदायिक पहचान को समझने में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक स्रोत के रूप में उपयोगी हैं। इनके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जा सकता है कि किसी लोकपरंपरा को समुदाय अपनी सामाजिक पहचान से किस प्रकार जोड़ता है।

यादव समाज में बिरहा की व्यापक लोकप्रियता ने इसे सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ सामुदायिक संगठन एवं सामाजिक चेतना के माध्यम के रूप में भी स्थापित किया। इसी व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अखिल भारतीय यादव महासभा के गठन (1923) का उल्लेख मिलता है। इस संगठन में यादव समुदाय की विभिन्न उपजातियों एवं सामाजिक समूहों की सहभागिता रही (प्रसाद, 2024)। संगठन से जुड़े सक्रिय सदस्य विभिन्न शहरों में समय-समय पर बैठकें एवं सम्मेलन आयोजित करते थे। इन आयोजनों में सामाजिक भेदभाव, असमानता, कुप्रथाओं, नशे की प्रवृत्ति, बाल-विवाह तथा दहेज-प्रथा जैसी सामाजिक समस्याओं पर चर्चा की जाती थी। ऐसे अवसरों पर बिरहा लोकगायन जनसंचार एवं सामाजिक जागरूकता का प्रभावी माध्यम बनता था।

समय के साथ बिरहा की विषयवस्तु में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। पारंपरिक ग्रामीण जीवन, पशुपालन, धार्मिक आस्था एवं सामाजिक संबंधों से जुड़े विषयों के साथ-साथ आधुनिक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याएँ भी बिरहा के विषय बनने लगी हैं। समकालीन बिरहा गायन में गरीबी, बेरोजगारी, प्रवासन, सामाजिक असमानता, राजनीतिक चेतना तथा बदलते पारिवारिक संबंधों जैसे विषयों को स्थान मिला है। दिनेश लाल यादव द्वारा प्रस्तुत 'मछली शहर की कहानी' तथा 'बेवफा गरीबी' जैसे बिरहा गीतों में समकालीन सामाजिक परिस्थितियों और परिवर्तित जनजीवन की अभिव्यक्ति दिखाई देती है (प्रसाद, 2016)।

बिरहा और जातीय-व्यावसायिक संबद्धता

बिरहा की विभिन्न गायन परंपराओं में जातीय एवं व्यावसायिक संबद्धता के तत्व भी दिखाई देते हैं। पारंपरिक लोकगायन में गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से गायन शैली, प्रस्तुति-कौशल, वाद्य-संगीत तथा गीतों की विषयवस्तु एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रही है। प्रसिद्ध बिरहा गायन परंपरा में बिहारी गुरु

का उल्लेख इसी गुरु-शिष्य परंपरा के संदर्भ में किया जाता है। इस परंपरा के माध्यम से बिरहा गायन की विशिष्ट शैली विकसित एवं संरक्षित हुई।

बिहारी गुरु

(गायन)

गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से बिरहा के गायन-कौशल के साथ-साथ इससे संबंधित सामाजिक एवं व्यावसायिक पहचान भी आगे बढ़ती रही। इस प्रकार बिरहा का अध्ययन केवल संगीत की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि जाति, पेशा, सामाजिक संगठन, सामुदायिक पहचान तथा सांस्कृतिक संचरण की प्रक्रियाओं के संदर्भ में भी किया जाना आवश्यक है।

बिरहा गायन की जातीय एवं व्यावसायिक संबद्धता

बिरहा गायन परंपरा में जाति, व्यवसाय तथा गुरु-शिष्य संबंधों का परस्पर जुड़ाव दिखाई देता है। पारंपरिक बिरहा गायकों की सामाजिक एवं व्यावसायिक पृष्ठभूमि का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि गायन के साथ कृषि, दुग्ध-विक्रय, श्रम, सेवा तथा अन्य ग्रामीण व्यवसाय जुड़े हुए थे। इससे यह संकेत मिलता है कि बिरहा केवल एक संगीतात्मक अभिव्यक्ति नहीं था, बल्कि ग्रामीण सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का भी अभिन्न हिस्सा था।

उपलब्ध विवरण में सरजू खलीफा, उमेश रम्मन दास, रम्मन दास, पन्तू गुरु, रामसेवक सिंह, अंबिका महाराज तथा बरसाती राजभर जैसे गायकों का उल्लेख मिलता है। इनमें कुछ का संबंध कृषि, कुछ का दुग्ध-विक्रय, कुछ का श्रम तथा कुछ का सेवा-कार्य से रहा है। इसी प्रकार काशी पासी, रामजी यादव, मुलई अहीर, सुखनंदन, रामदेव अहीर, गटर अहीर, रामसकल अहीर, मुस्तफा मुस्लिम, हीरालाल, बुल्लू अहीर, उल्टन अहीर, कांता, सुदामा तथा श्रीपत पहलवान आदि नाम भी बिरहा गायन से संबद्ध रहे हैं।

इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि बिरहा गायन किसी एक जाति या व्यवसाय तक सीमित नहीं था। यद्यपि अहीर/यादव समुदाय की इसमें महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली भूमिका रही, तथापि अन्य जातीय एवं धार्मिक समूहों के कलाकारों ने भी इसके विकास में योगदान दिया। इस प्रकार बिरहा ग्रामीण समाज की बहुस्तरीय सामाजिक संरचना को अभिव्यक्त करने वाली लोकपरंपरा के रूप में सामने आता है।

बिरहा का लैंगिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय ग्रामीण समाज में महिलाओं की सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। लोकगीतों की परंपरा में महिलाओं ने अपने दैनिक जीवन, पारिवारिक संबंधों, भावनात्मक अनुभवों तथा सामाजिक परिस्थितियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। बिरहा भी इससे अछूता नहीं रहा है। इसके अनेक गीतों की विषयवस्तु महिलाओं के जीवन से संबंधित सामाजिक एवं पारिवारिक प्रश्नों को अभिव्यक्त करती है। इनमें दहेज, दहेज-हत्या, बाल-विवाह, विवाह, पति-वियोग, विदाई तथा पारिवारिक संबंधों से जुड़े विषय प्रमुख हैं।

इसी प्रकार शिव-विवाह, सोहर, नकटा आदि लोकगीतों का गायन भी महिलाओं द्वारा विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक अवसरों पर किया जाता रहा है। इन गीतों में स्त्रियों के भावनात्मक अनुभवों के साथ-साथ विवाह, मातृत्व, पारिवारिक संबंधों तथा सामाजिक अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इस दृष्टि से महिला लोकगायन ग्रामीण समाज में स्त्री-अनुभवों को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण सांस्कृतिक माध्यम रहा है।

बिरहा की पारंपरिक गायन-व्यवस्था में महिला कलाकारों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही है। लोकगायन के सार्वजनिक एवं व्यावसायिक मंचों पर पुरुष कलाकारों, विशेषकर अहीर/यादव समुदाय से संबंधित गायकों की प्रमुखता लंबे समय तक बनी रही। इसके पीछे ग्रामीण सामाजिक संरचना, लैंगिक भूमिकाएँ, सार्वजनिक मंचों

तक महिलाओं की सीमित पहुँच तथा लोकसंगीत के व्यावसायीकरण जैसी परिस्थितियों की भूमिका रही हो सकती है।

हालाँकि, समकालीन समय में महिला कलाकारों की सहभागिता में वृद्धि हुई है। राणा राव, कल्पना पटवारी, मीना मोरती तथा रवीना रंजन जैसी गायिकाओं ने बिरहा एवं संबंधित भोजपुरी लोकसंगीत परंपराओं में अपनी पहचान स्थापित की है। इनके माध्यम से महिला कलाकारों की उपस्थिति लोकसंगीत के सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक स्पष्ट हुई है।

फिर भी, बिरहा गायन के क्षेत्र में पुरुष कलाकारों, विशेषकर अहीर/यादव समुदाय के कलाकारों की प्रमुखता अभी भी दिखाई देती है। अतः बिरहा के लैंगिक अध्ययन में केवल गीतों की विषयवस्तु ही नहीं, बल्कि कलाकारों की सामाजिक पृष्ठभूमि, मंचों तक पहुँच, प्रशिक्षण एवं गुरु-शिष्य परंपरा, आर्थिक अवसर तथा सार्वजनिक सांस्कृतिक क्षेत्र में महिला-पुरुष की भागीदारी का तुलनात्मक अध्ययन भी आवश्यक है।

इस प्रकार बिरहा का लैंगिक परिप्रेक्ष्य दो महत्वपूर्ण पक्षों को सामने लाता है—एक ओर यह महिलाओं के जीवन, अनुभवों और सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्ति देने वाला माध्यम है, वहीं दूसरी ओर इसके सार्वजनिक एवं व्यावसायिक गायन में पुरुष वर्चस्व की स्थिति भी दिखाई देती है। समकालीन दौर में महिला गायिकाओं की बढ़ती भागीदारी इस पारंपरिक संरचना में परिवर्तन की ओर संकेत करती है।

निष्कर्ष

बिरहा भोजपुरी भाषी ग्रामीण समाज की एक महत्वपूर्ण लोकसांस्कृतिक एवं लोकसंगीत परंपरा है, जिसका संबंध केवल मनोरंजन से नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन, सामुदायिक पहचान, सांस्कृतिक स्मृति तथा जनचेतना से भी है। यह मूलतः मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही है और इसके माध्यम से ग्रामीण समाज के जीवनानुभव, रीति-रिवाज, लोकविश्वास, सामाजिक संबंध तथा सामूहिक आकांक्षाएँ अभिव्यक्त होती रही हैं। इस दृष्टि से बिरहा को लोकज्ञान एवं लोक-इतिहास के संरक्षण और संचार का महत्वपूर्ण माध्यम माना जा सकता है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बिरहा को केवल अहीर अथवा यादव समुदाय की लोकगीत परंपरा के रूप में सीमित करना उचित नहीं है। यद्यपि यादव समुदाय में इसकी विशेष लोकप्रियता रही है, किंतु समय के साथ मुस्लिम, धोबी, खटिक तथा अन्य सामाजिक समुदायों ने भी इसे अपनाया और अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप इसकी विभिन्न शैलियों का विकास किया। इससे बिरहा की समावेशी एवं परिवर्तनशील प्रकृति स्पष्ट होती है। साथ ही, इसकी विभिन्न शैलियाँ जाति, पेशा और स्थानीय संस्कृति के पारस्परिक संबंधों को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।

बिरहा की विषयवस्तु भी समय और सामाजिक परिस्थितियों के साथ निरंतर परिवर्तित हुई है। प्रारंभिक दौर में पशुपालन, कृषि, ग्रामीण जीवन, प्रेम, विरह, धार्मिक आस्था एवं लोकविश्वास इसके प्रमुख विषय रहे, जबकि औपनिवेशिक काल और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान सामाजिक संघर्ष तथा स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान जैसे विषयों को भी इसमें स्थान मिला। समकालीन समय में गरीबी, बेरोजगारी, प्रवासन, सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव, लैंगिक प्रश्न, राजनीतिक चेतना तथा बदलते सामाजिक संबंध बिरहा की विषयवस्तु का हिस्सा बन गए हैं। इस प्रकार बिरहा सामाजिक परिवर्तन के साथ स्वयं भी परिवर्तित होने वाली जीवंत लोकपरंपरा है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से बिरहा सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक चेतना के बीच संबंध स्थापित करने वाला महत्वपूर्ण माध्यम है। प्रकार्यवादी दृष्टिकोण से यह सामुदायिक एकता एवं सामाजिक जुड़ाव को सुदृढ़ करता है, जबकि संघर्षवादी एवं मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इसकी विषयवस्तु सामाजिक असमानता, शोषण और वंचना के प्रश्नों को सामने लाती है। इसी प्रकार, उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण से बिरहा को बहुअर्थी सांस्कृतिक पाठ के रूप में देखा जा सकता है, जिसके अर्थ सामाजिक संदर्भों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इसके माध्यम से ग्रामीण समाज में विभिन्न सामाजिक प्रश्नों पर विमर्श एवं जनचेतना का निर्माण भी होता है।

बिरहा की गुरु-शिष्य परंपरा ने इसके गायन-कौशल, शैली एवं सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वहीं, बदलते संचार माध्यमों और आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों ने इसके स्वरूप और प्रस्तुति में भी परिवर्तन किया है। इसके बावजूद बिरहा आज भी पूर्वी उत्तर प्रदेश और भोजपुरी भाषी क्षेत्रों में लोकजीवन से जुड़ी एक प्रभावशाली सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के रूप में विद्यमान है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बिरहा केवल एक लोकगीत या लोकसंगीत शैली नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक स्मृति, सामुदायिक पहचान और जनचेतना का जीवंत दस्तावेज है। इसके अध्ययन से भोजपुरी समाज में जाति, वर्ग, पेशा, लैंगिक संबंध, सामाजिक परिवर्तन तथा सांस्कृतिक निरंतरता की प्रक्रियाओं को समझने में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। भविष्य में बिरहा के अध्ययन को महिला कलाकारों की सहभागिता, डिजिटल माध्यमों पर इसके बदलते स्वरूप, प्रवासी समुदायों में इसके प्रसार तथा समकालीन राजनीतिक एवं सामाजिक विमर्श में इसकी भूमिका के संदर्भ में आगे बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार बिरहा का संरक्षण केवल एक लोकसंगीत परंपरा का संरक्षण नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने का प्रयास भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी, एम. प्रताप नारायण (1985). *अवधी लोकगीत*, भाग-1. इलाहाबाद: वसुमति प्रकाशन, पृ. 196।
2. जैन, शांति (1999). *लोकगीत के संदर्भ और आयाम*. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, पृ. 449।
3. दास, श्रीकृष्ण (1956). *लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या*. इलाहाबाद: साहित्य भवन, पृ. 20।
4. नागला, वी. के. (2017). *भारतीय समाजशास्त्रीय चिंतन*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स, पृ. 59।
5. प्रसाद, देवी सविता यादव (2024). "ग्रामीण परिवेश में बिरहा लोकगीत." *भारतीय समाज की गतिशीलता*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स, पृ. 141-148।
6. प्रसाद, देवी सविता (2016). "सिम्बायोसिस, टेलीप्रोसिटी एंड विलेजेज ऑफ उत्तर प्रदेश." *साउथ एशियन एंथ्रोपोलॉजिस्ट*, खंड 16, अंक 2, पृ. 185।
7. शुक्ल, रामचंद्र (2009). हिंदी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
8. द्विवेदी, हजारी प्रसाद (2010). हिंदी साहित्य की भूमिका. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।